राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

अनुराग बेहार से टुलटुल बिस्वास की बातचीत

इस परिचर्चा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बारे में बात की गई है। अनुरागजी शिक्षा नीति की निर्माण समिति के एक सक्रिय सदस्य रहे हैं। वे न केवल इस शिक्षा नीति को बनाने की प्रक्रिया को विस्तार से बताते हैं बल्कि इसके बुनियादी सिद्धान्तों को भी रेखांकित करते हैं। वे चर्चा में शामिल शिक्षकों, अकादमिक व्यक्तियों द्वारा नीति के सन्दर्भ में उठाए गए सवालों पर भी चर्चा करते हैं। इस नीति को कैसे पढ़ा और समझ जाए इस सन्दर्भ में भी एक नज़रिया देते हैं। सं.

टुलटुल : हम अनुराग बेहार जी से नई शिक्षा नीति 2020 के बारे में बातचीत करेंगे।

अनुराग बेहार वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी हैं और अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय बेंगलुरु के फ़ाउण्डिग वाइस चांसलर हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन एक न्यायपूर्ण, समता मूलक, मानवीय और टिकाऊ समाज के निर्माण में योगदान देने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

लगभग पिछले 15 सालों से आप सार्वजनिक व्यवस्थाओं के बारे में, ख़ासकर शिक्षा पर, बात करते रहे हैं व शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था के गहरे महत्त्व के मुखर पैरोकार रहे हैं। *मिंट* में आपके पाक्षिक कॉलम बहुत लोग पढ़ते रहे हैं।

2019 से तैयार हो रही नई शिक्षा नीति के प्रारूप सामने आते रहे और नीति का अन्तिम स्वरूप जुलाई 2020 में जारी हुआ। शिक्षा नीति पूरे देश की शिक्षा को आधारभूत दिशा देने वाला दस्तावेज़ होता है। पहली बार 1964 में यह ज़रूरत महसूस की गई थी कि आज़ाद भारत की एक शिक्षा नीति होनी चाहिए, और 1968 में पहली शिक्षा नीति हमारे सामने आई। फिर 1986 में उसमें कुछ तब्दीलियाँ करते हुए दूसरी शिक्षा नीति हमारे सामने आई और अब 2020 में ये तीसरी नीति हमारे सामने प्रस्तुत है।

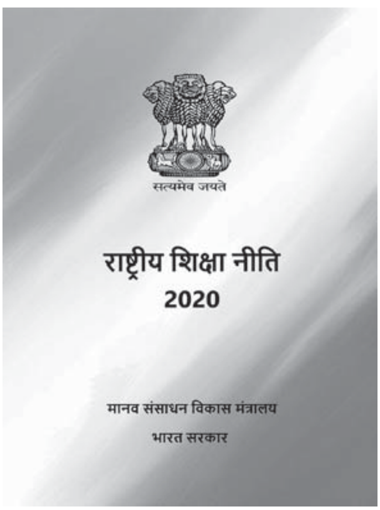

आप इस नीति की निर्माण समिति का हिस्सा थे, आपकी नज़र में ऐसे कौन-से ख़ास क्षेत्र हैं, कौन-से विषय हैं जिनमें आ रही शिक्षा की चुनौतियों को दूर करने की दिशा में शिक्षक सक्रिय रूप से काम कर सकते हैं।

अनुराग : *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* का शिक्षकों के काम से सम्बन्ध, उनको नीति से क्या प्रोत्साहन मिलता है, क्या सहूलियतें मिलेंगी, इस

सम्बन्ध में बात शुरू करने से पहले *शिक्षा नीति 2020* के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों के बारे में बात कर लें और इनके मायने समझ लें। इतनी व्यापक शिक्षा नीति 1986 के बाद पहली बार बनी है। इसमें भारतवर्ष के पूरे शिक्षा तंत्र को शाला पूर्व शिक्षा से लेकर डॉक्टोरल की पढ़ाई तक और स्कूल, कॉलेज के अन्दर और बाहर सभी को शामिल किया गया है।

इसका पहला प्रारूप मई 2019 में भारत सरकार को प्रस्तुत किया गया था। ये प्रारूप 484 पेज का एक लम्बा दस्तावेज़ था। इस दस्तावेज़ को 30 मई 2019 से 15 अगस्त 2019 तक पब्लिक कमेंट के लिए प्रस्तुत किया गया। क़रीब 3 लाख टिप्पणियाँ और सुझाव आए जो देश के हर कोने से थे। ये टिप्पणियाँ और सुझाव हर तरह के क्षेत्र के लोगों से थे शिक्षकों से, जनता से, छात्रों से, और ऐसे लोगों से भी थे जो शिक्षा व्यवस्थाओं से जुड़े थे, जैसे– शोधकर्ता, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ आदि। इन टिप्पणियों के आधार पर उस प्रारूप को संशोधित किया गया और फिर उसी दस्तावेज़ के आधार पर 66 पेज का एक सारांश बनाया गया जिसको दरअसल *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के रूप में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और भारत सरकार ने जारी किया।

जब हम शिक्षा नीति की बात करते हैं और उस 66 पेज के डॉक्युमेंट को देखते हैं तब कुछ चीज़ें साफ़ नहीं होतीं, क्योंकि वो उस 484 पेज के दस्तावेज़ का सारांश है। जब कोई अस्पष्टता हो तब अच्छा होगा कि शिक्षा मंत्रालय की वेबसाइट पर उपलब्ध 484 पेज के दस्तावेज़ को देख लिया जाए। दूसरी बात, ये नीति दस्तावेज़ नहीं है, ये नीति का एक फ्रेमवर्क है और इसके अन्दर कई तरह की नीतियाँ हैं, इसमें कई सारे नियमों / क़ानूनों का इम्पैक्ट है। इन सबको क्रियान्वित करने के लिए बहुत काम करने की ज़रूरत है। अभी क्रियान्वयन की महज़ शुरुआत हुई है। शिक्षा नीति कई मामलों में यह कहती भी है कि किसका क्रियान्वयन अभी एक–आध साल में हो सकता है, लेकिन कई ऐसी चीज़ें हैं जिनका पूरी तरह से क्रियान्वयन करने के लिए काफ़ी वक़्त (दस–पन्द्रह साल) लगेगा। अब मैं आपके समक्ष इस नीति के बुनियादी सिद्धान्त रखता हूँ।

पहला सिद्धान्त यह है कि इस नीति के हिसाब से शिक्षा का उद्देश्य एक अच्छे मनुष्य और अच्छे समाज की रचना है। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज की दुनिया के सन्दर्भ में शिक्षा नीति कह सकती थी कि शिक्षा का मूल उद्देश्य रोज़गार है, रोज़गार की उपलब्धता है। लोगों को आजीविका का साधन दे यही शिक्षा का उद्देश्य है, लेकिन ऐसा नहीं कहा गया है। अच्छा समाज और अच्छा मनुष्य वो है जो हमारे संवैधानिक मूल्यों को जीवन्त करता है, हमने अपने–आप से 1950 में जो वायदे किए हैं उनको जीवन्त करता है। ऐसे समाज और मनुष्य की संरचना करना शिक्षा का उद्देश्य है, यह इस नीति का पहला बुनियादी सिद्धान्त है।

दूसरा बुनियादी सिद्धान्त है कि शिक्षा एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है। हालाँकि लोग शिक्षा को अलग–अलग तरह से देखते हैं; कुछ लोग इसे एक खरे व्यवसाय के रूप में देखते हैं कुछ अन्य इसे एक तकनीकी चीज़ समझते हैं। नीति का फ्रेमवर्क इस तरह के दृष्टिकोणों से भी प्रभावित हो सकता था, क्योंकि शिक्षा नीति की कमेटी ने ज़्यादा व्यापक बातचीत और मशविरा किया इससे यह बात साफ़ हो गई कि शिक्षा को हमें एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया के रूप में ही देखना पड़ेगा। सामाजिक मानवीय प्रक्रिया का मतलब है, छात्र और शिक्षक के बीच, छात्र और छात्र के बीच, शिक्षक और शिक्षकों के बीच जो सम्बन्ध होते हैं उनके आधार पर ही शिक्षा होती है। इन मानवीय सम्बन्धों के बिना, इन सामाजिक प्रक्रियाओं के बिना शिक्षा नाम की कोई चीज़ होती ही नहीं। स्कूल भवन, शौचालय का होना, पाठ्यपुस्तकें व यूनिफ़ॉर्म, यह सब चीज़ें ज़रूरी हैं और सभी छात्रों को ये सब चीज़ें मुहैया होनी ही चाहिए, लेकिन शिक्षा का मूल शिक्षक और छात्र के बीच में है इसलिए इस नीति में इसको सामाजिक मानवीय प्रक्रिया माना गया है।

तीसरा सिद्धान्त है कि अगर शिक्षा सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है और इसका उद्देश्य संविधान में लिखित प्रकृति के समाज की संरचना करना है तो ऐसी शिक्षा केवल एक सार्वजनिक शिक्षा तंत्र के आधार पर हो सकती है। पिछले 6-8 महीने में अलग-अलग तरह के लेख देखे हैं जो कहते हैं कि शायद यह नीति सार्वजनिक शिक्षा तंत्र पर ज़ोर नहीं देती। आप 66 पेज और 484 पेज वाले दोनों दस्तावेज़ों को पढ़ें तो साफ़तौर पर पाएँगे, नीति कहती है कि हमारे देश में और किसी भी देश में अच्छी शिक्षा का आधार केवल सुदृढ़ सार्वजनिक शिक्षा तंत्र ही हो सकता है। शिक्षा नीति इस बात को

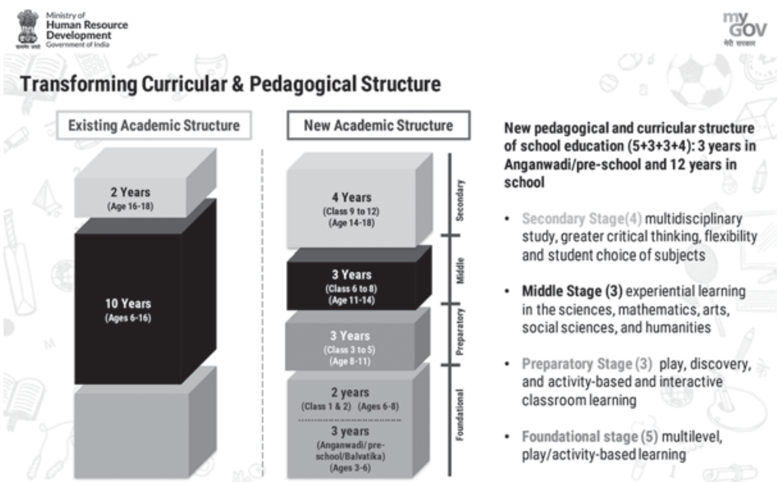

कमिट करती है कि सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ भी किया जाएगा और फैलाया भी जाएगा।

चौथा मुख्य सिद्धान्त है, अगर शिक्षा का उद्देश्य अच्छे इंसान और अच्छे समाज की संरचना है और वह एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है तो हमारे शिक्षा तंत्र में सबसे अहम भूमिका शिक्षक की है। हमें वो सारे प्रयास, वो सारे निर्णय लेने पड़ेंगे जिनकी ज़रूरत है जिनसे शिक्षकों को सपोर्ट, इज़्ज़त, एक सामाजिक स्थान मिल सके। 'इज़्ज़त' को मैं गहरे अर्थ में कह रहा हूँ। इसका मतलब यह नहीं है कि हम कहते रहें कि शिक्षक को इज़्ज़त दें। इसका मतलब यह है कि शिक्षक को वो इज़्ज़त मिले। अगर समाज में शिक्षक को यह जगह देनी है तो उसे समर्थ करना पड़ेगा, उसको सपोर्ट करना पड़ेगा। फरक ढंग से कहूँ तो यह फ्रेमवर्क कहता है कि विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा होनी चाहिए, लेकिन उससे पहले हमें शिक्षक-केन्द्रित शिक्षा करनी होगी। अगर हम शिक्षा को शिक्षक-केन्द्रित नहीं करेंगे तो हम शिक्षा को विद्यार्थी-केन्द्रित कर ही नहीं सकते।

पाँचवाँ सिद्धान्त, बारीक़ी से देखें तो यह हमें अपनी ज़िन्दगी में रोज़ नज़र आता है। यह सिद्धान्त है– शिक्षा तंत्र में गुणवत्ता लाने के लिए समानता पर ध्यान देना ही होगा। समानता होगी तभी गुणवत्ता आएगी। समानता के ज़रिए गुणवत्ता की बात मुझे व्यक्तिगत तौर पर बहुत अच्छी लगी कि एक फ्रेमवर्क ऐसा कह सकता है। जिस भी शिक्षा तंत्र में या जो शिक्षा तंत्र यह सुनिश्चित करता है या ऐसा माहौल बना पाता है कि सब बच्चों को बराबरी की शिक्षा मिले, ऐसी शिक्षा जिसकी उन्हें ज़रूरत है तो गुणवत्ता अपने-आप बेहतर होती है। ऐसे शिक्षा तंत्र जो सिर्फ़ गुणवत्ता पर ध्यान देते हैं वहाँ न तो गुणवत्ता बेहतर होती है न ही अधिकांश बच्चों के लिए बराबरी होती है।

इस पूरे दस्तावेज़ में क़रीब 19 या 20 मुख्य बुनियादी सिद्धान्त हैं। मैं सबका उल्लेख नहीं करूँगा। इस छठे सिद्धान्त के बाद मैं शिक्षकों की कुछ बातों पर चला जाऊँगा। छठा सिद्धान्त है– इस शिक्षा तंत्र की संस्कृति संस्थानिक सशक्तिकरण की हो। शिक्षा तंत्र लोगों को सम्बल दे, सशक्त करे, न कि इसमें रोक-टोक की संस्कृति हो, और यह न ही निरीक्षकीय

हो कि जो निर्देश दे रहे हैं वही करते रहिए। इसका एक बहुत ही आम उदाहरण है, अगर हम चाहते हैं कि हमारी शिक्षा से एक अच्छे मनुष्य की संरचना हो तो अच्छे मनुष्य का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि वो स्वयं सोचने की क्षमता रखता हो, प्रश्न उठाने की क्षमता रखता हो। यदि हमें ऐसे विद्यार्थी विकसित करने हैं तो इसके लिए विषयवस्तु, पाठ्यक्रम केवल ये ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, इसके लिए कक्षा की संस्कृति, वहाँ का बातचीत करने का माहौल, एक दूसरे से प्रश्न पूछने, सोचने, ग़लतियाँ करके सीखने का मौक़ा होना ज़रूरी है। ऐसी संस्कृति कक्षा में तभी आ सकती है, उसका संरक्षण तब ही हो सकता है जब पूरे स्कूल में वो संस्कृति हो। मान लीजिए स्कूल में संस्कृति है कि प्रश्नों को दबाया जाए, लोगों की बात न सुनी जाए, लोगों से बातचीत न की जाए तो कक्षा में स्वतंत्रता की संस्कृति कैसे होगी? उसी तरह यदि ब्लॉक में, ज़िले में पूरे शिक्षा तंत्र में ऐसी संस्कृति है कि किसी की बात न सुनी जाए, सब व्यक्तियों को संशय की नज़र से देखा जाए तो स्कूल में विश्वास की संस्कृति कैसे होगी?

जिस तरह की शिक्षा हम चाहते हैं उसके लिए बहुत सारे काम करने पड़ेंगे। एक प्रमुख काम यह है कि हमें कक्षा से लेकर पूरे शिक्षा तंत्र की संस्कृति को बदलना पड़ेगा। इसके लिए कई पहलुओं पर काम करना पड़ेगा, बीईओ, डीईओ की भूमिका क्या होती है? कमिश्नरेट, डायरेक्टरेट, नियामक तंत्र क्या करता है?, आदि। अब मैं शिक्षकों और उन मुद्दों के बारे में बात करता हूँ जिनका इन मूल सिद्धान्तों से सीधा वास्ता है–

पहला यह कि इस फ्रेमवर्क के अध्याय 'शिक्षक और शिक्षक शिक्षा' को आप ज़रूर पढ़ें।

अध्याय कहता है कि अगर शिक्षक का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है तो यह बिलकुल बुनियादी बात है कि शिक्षा तंत्र द्वारा शिक्षक की आधारभूत आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। ये आधारभूत आवश्यकताएँ हैं– कक्षाएँ हैं कि नहीं, उनमें बैठने की जगह है कि नहीं, टॉयलेट है कि नहीं और उसमें पानी आता है कि नहीं, बच्चों को किताबें मिलीं कि नहीं। फिर इस तरह की आवश्यकताएँ, जैसे– शिक्षक की नियुक्तियाँ आदि। यह समझना कि एक शिक्षक 60 बच्चों को पढ़ा सकता है या एक शिक्षक जिसने ख़ुद गणित नहीं पढ़ी है वो 8वीं में गणित पढ़ाए, यह भी मुश्किल है। शिक्षा तंत्र को इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ेगा तब ही शिक्षकों को उनका वाज़िब स्थान मिलेगा और तब ही वो अपना काम पूरी तरह से कर पाएँगे।

इसका मतलब यह नहीं है कि एक ही दिन में इनको पूरा कर दिया जाए और इसलिए यह फ्रेमवर्क कहता है कि जब शिक्षा तंत्र की संस्कृति सशक्तिकरण की होगी तब शायद एक समय ऐसा आएगा कि हमारे शिक्षा तंत्र में इतने बदलाव होंगे कि स्कूल की पाठ्यचर्या भी शिक्षक ही तय करेंगे। ये आज ही हो सकता है ऐसा नहीं है, लेकिन दिशा यह है कि शिक्षक को इतना सशक्त होना चाहिए कि कोई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या हो उस आधार पर स्कूल ख़ुद अपनी पाठ्यचर्या को निर्धारित कर सके। यह रेखांकित कर दूँ कि मैं ऐसा नहीं कह रहा कि आज से ही ऐसा होगा इसके लिए बहुत काम करने की ज़रूरत है।

तीसरी चीज़ वो कहता है कि हमारे सार्वजनिक शिक्षा तंत्र के स्कूल को स्कूल कॉम्प्लेक्स के रूप में विकसित करना चाहिए। स्कूल कॉम्प्लेक्स का मतलब जिसमें 6-7 प्राथमिक स्कूल, 2-3 उच्च प्राथमिक स्कूल, एक उच्च माध्यमिक स्कूल हो। इन 8-10 स्कूलों के समूह को एक स्कूल कॉम्प्लेक्स मानकर चलना चाहिए और इनमें इस बात की समझ होनी चाहिए कि संसाधनों को साझा किया जाएगा, संसाधनों को कम नहीं किया जाएगा। उदाहरण के लिए, आज हम सरकारी स्कूलों में एक संगीत शिक्षक, एक स्पोर्ट्स शिक्षक चाहते हैं लेकिन सब जगह ऐसा हो नहीं पाता। क्या ऐसा हो सकता है कि (दरअसल इस मामले में जो बातचीत है वो तो 1968 की पॉलिसी में शुरू हो

गई थी) हर स्कूल कॉम्प्लेक्स में संगीत शिक्षक और स्पोर्ट्स शिक्षक नियुक्त कर सकते हैं भले ही हम हर स्कूल में न नियुक्त कर पाएँ।

चौथा यह कि शिक्षकों की दिशा हमेशा सतत पेशेवर विकास की है और इस सतत पेशेवर विकास के लिए शिक्षकों को तरह-तरह के अवसर मिलें यह बहुत ज़रूरी है। फ्रेमवर्क कहता है कि यदि स्कूल कॉम्प्लेक्स स्थापित होंगे तो वहाँ 25-30 शिक्षक एक साथ मिलकर बातचीत कर सकते हैं, एक दूसरे से सीख सकते हैं, सिखा सकते हैं। यह भी कहा गया है कि साल में कम-से-कम 50 घण्टे शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए मुहैया होने चाहिए और उन 50 घण्टों में उन्हें विकास के उत्कृष्ट मौक़े उपलब्ध कराने चाहिए।

अन्ततः यह एक सरकारी दस्तावेज़ है। इसमें सरकारी दस्तावेज़ की तरह की भाषा भी है लेकिन कई जगहों पर इसकी भाषा बिलकुल सच्चाई को दर्शाती है। एक जगह यह शिक्षा नीति हमारी शिक्षक शिक्षण व्यवस्था के बारे में, बीएड, डीएड, डीएलएड के बारे में बात करती है और साफ़ कहती है कि मौजूदा शिक्षक शिक्षण व्यवस्था में बहुत समस्याएँ हैं। बहुत सारे बीएड, डीएड कॉलेज दुकानें बन गए हैं जिनसे बिना वहाँ जाए डिग्रियाँ ख़रीदी जा सकती हैं। अतः यह ज़रूरी है कि शिक्षक शिक्षण तंत्र को पूरी तरह से, आमूलचूल रूप से बदला जाए। अगर समाज को यह मालूम है कि शिक्षक बनने के लिए ज़रूरी डिग्री को ख़रीदा जा सकता है तो समाज के मन में उस डिग्री का क्या स्थान होगा, और जो लोग ये डिग्री ले रहे हैं उनके लिए क्या स्थान होगा? यदि शिक्षकों को शिक्षा तंत्र में, समाज में उनकी सही जगह दिलानी है तो शिक्षक शिक्षण तंत्र को पूरी तरह सुधारा जाए यह ज़रूरी है। इसके लिए शिक्षा नीति कई महत्त्वपूर्ण कार्य कहती है। उदाहरण के लिए, यह कहती है कि 5 से 10 साल के वक़्त में सारा शिक्षक शिक्षण तंत्र बदल जाएगा। अब प्राइमरी, सेकेंडरी के लिए चार साल का एक समेकित कार्यक्रम होगा और इस तरह का चार साल का समेकित कार्यक्रम केवल मल्टी डिसिप्लीनरी इंस्टीट्यूशन्स के लिए होगा। मल्टी डिसिप्लीनरी का मतलब ऐसे कॉलेज और विश्वविद्यालय जहाँ बीए, बीएससी व अन्य सभी विषय भी पढ़ाए जाते हैं वहाँ से करना होगा, महज़ बीएड या डीएड कॉलेज से नहीं। ये भी कहती है कि नियम-क़ायदों को बदलना पड़ेगा, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) को पूरी तरह से बदलना पड़ेगा। आप लोगों ने सुना और पढ़ा होगा कि 2021 के अन्त तक या हो सकता है 2022 तक एक नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा आएगी, उसके आधार पर पूरी शिक्षा की पुनर्रचना होगी। उसे 5 + 3 + 3 + 4 कहा जा रहा है। इसका मतलब तीन साल की उम्र से पहली और दूसरी तक के पाँच सालों को साथ जोड़कर एक फ़ाउण्डेशन स्टेज कहा है। इसमें

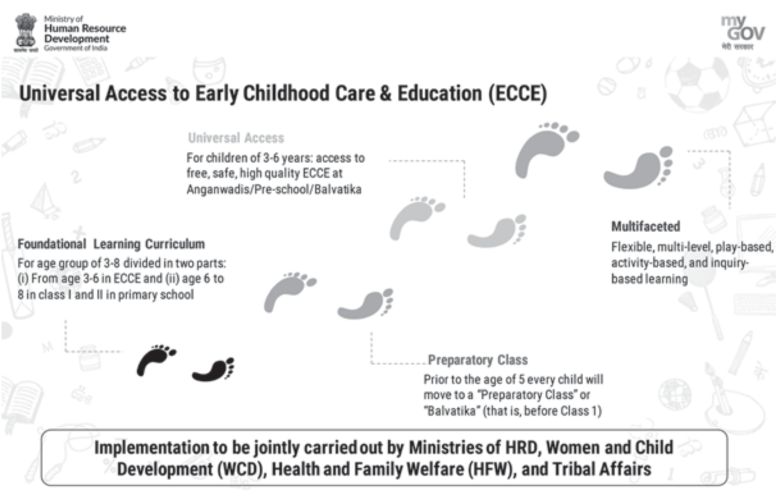

एक तरह की शिक्षाशास्त्रीय अप्रोच है। उसके बाद आज की तीसरी, चौथी और पाँचवीं अगला चरण है; फिर छठी, सातवीं और आठवीं; उसके बाद नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं। यह किस तरह से होगा उसका बुनियादी सिद्धान्त तो शायद है लेकिन ठीक-ठीक कैसे होगा इसे जानने के लिए एनसीएफ़ 2021-22 के आने तक इन्तज़ार करना पड़ेगा।

पुरुषोत्तम : भारत की ग्रामीण संस्कृति है। ऐसा लगता है कि शिक्षा में जो आमूलचूल परिवर्तन होते जा रहे हैं उनका स्वरूप निजीकरण के माध्यम से व्यवसायीकरण की ओर जा रहा है। शिक्षा की संस्कृति को बदलना है क्योंकि शिक्षा बदलेगी तो समाज बदलेगा और समाज बदलेगा तो राष्ट्र बदलेगा। शिक्षा को केन्द्रीकृत नहीं होना चाहिए उसका विकेन्द्रीकरण होना चाहिए लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य में जैसा माहौल मध्य प्रदेश में देखा जा रहा है यहाँ माध्यम विकेन्द्रीकरण से केन्द्रीकरण की ओर जा रहा है।

हम भारत के अन्तिम नागरिक को भी शिक्षित करना चाहते हैं। यही ध्यान में रखते हुए हमने टोले-टोले में जाकर केन्द्र खोले, हर 3 किलोमीटर पर माध्यमिक विद्यालय खोले, अब आज हम उन विद्यालयों को हटाकर एक स्कूल कॉम्प्लेक्स की बात कर रहे हैं। मुझे हमारा देश अप्रत्यक्ष रूप से बिकता हुआ लग रहा है समाज की शिक्षा को छीनकर व्यवसायियों के हाथों में सौंपा जा रहा है।

अनुराग : सार्वजनिक शिक्षा तंत्र से निजी स्कूलों की तरफ़ बच्चों का पलायन पिछले 15-20 सालों से, बहुत ज़ोर से चल रहा है। और चूँकि ये पिछले 15-20 सालों से चल रहा है तो हमको कुछ सवाल अपने-आप से पूछने चाहिए कि ऐसा होता क्यों है?

यह शिक्षा नीति स्पष्टता से कहती है कि अच्छी शिक्षा का आधार सार्वजनिक शिक्षा तंत्र ही हो सकता है, इसलिए सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने और इसे फैलाने के लिए शिक्षा पर सार्वजनिक पूँजी का ख़र्चा दुगुना किया जाएगा क्योंकि इसे दुगुना किए बग़ैर सार्वजनिक शिक्षा तंत्र में बेहतरी, सुधार करना मुश्किल है। अब तक भारत सरकार और राज्य सरकारों के पूरे ख़र्चे का 10 प्रतिशत भाग सार्वजनिक शिक्षा पर निवेश होता था अब वह 20 प्रतिशत किया जाएगा। यह निवेश सारे पहलुओं में होगा, चाहे वो मूलभूत इन्फ्रास्ट्रक्चर की बात हो, चाहे शिक्षक नियुक्तियों की। कई राज्यों में अलग-अलग काडर के शिक्षक होते हैं जिनमें कुछ कॉन्ट्रेक्ट पर हैं कुछ परमानेंट, लेकिन काम सब एक ही तरह का कर रहे हैं। यह शिक्षा नीति कमिट करती है कि अगर शिक्षकों को एक ही तरह के काम के लिए नियुक्त कर रहे हैं तो सभी के लिए बराबरी की शर्तें लागू होनी चाहिए। इन सभी मुद्दों और उनपर निवेश को लेकर इस शिक्षा नीति में प्रतिबद्धता है। इस शिक्षा नीति का क्रियान्वयन कैसे होगा, यह देखना है। अगर शिक्षा नीति को फ़ॉलो किया जाएगा और अगर उसका 20%-30% भी क्रियान्वित किया जाएगा तो उसकी दिशा सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को बेहतर करने, उसको सुदृढ़ करने की ही होगी।

मध्य प्रदेश में, अन्य कुछ राज्यों में जो हो रहा है इसको इसी धारा, जो पिछले 10-15 साल से बह रही है, के तहत देखना चाहिए। यह धारा इतनी तेज़ी से बह रही है तो इसे बदलने में वक़्त लगेगा, साथ ही धारा बदलने का मतलब महज़ यह नहीं है कि बच्चे वापस सार्वजनिक शिक्षा तंत्र में आने लगें जो इस महामारी के कारण होने लगा है। मुख्य बात यह है कि लोगों की मानसिकता में परिवर्तन कैसे होगा? हम जानते हैं कि उच्च स्तरीय ओहदों पर जो लोग हैं उनकी मानसिकता में यह बात आ गई है कि सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को बेहतर नहीं कर सकते तो क्यों न प्राइवेट स्कूल ही ले लें। धारा परिवर्तन की बात शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने की बात नहीं है न ही यह इस मानसिकता में बदलाव की बात है, लेकिन मानसिकता में बदलाव आने के लिए इस तरह की बातें ज़रूरी हैं। इस शिक्षा नीति से हमें नई ऊर्जा, एक नया बल मिलना चाहिए जिससे हम सार्वजनिक

तंत्र को बेहतर कर सकें और निजीकरण का फिनोमिना धीरे-धीरे ख़त्म हो सके।

टुलटुल : दो सवाल हैं– पहला 10 + 2 खण्ड को बदलकर 5 + 3 + 3 + 4 की बात नीति करती है, यह पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र के महत्त्व को रेखांकित करती है। हमने भी देखा है कि आँगनवाड़ियों के प्रशिक्षण और अभी जो स्थितियाँ हैं उनमें पोषण को फिर भी थोड़ी जगह मिलती है, लेकिन शिक्षण वाला हिस्सा काफ़ी हद तक नज़रअन्दाज़ ही रहता है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान देना महत्त्व का लगता है, पर इसको ज़मीन पर उतारने में किस तरह की चीज़ें करनी होंगी? इस सन्दर्भ में किस तरह की चर्चाएँ इस नीति को बनाने में हुई हैं? आँगनवाड़ी अभी महिला एवं बाल विकास विभाग के तहत है, क्या वो शिक्षा विभाग के तहत आएगी? क्या शिक्षकों की पूर्व प्राथमिक शिक्षा के दायरों में प्रशिक्षणों की ज़रूरत होगी? अगर इस तरह के बदलाव की दिशा में हम जाते हैं तो इसके लिए किस तरह की तैयारी की, योजनाओं की, बातचीत की, चर्चा की, चिन्ताएँ इसमें आपको दिखती हैं? इसी से जुड़ा हिस्सा है जहाँ खेल, बच्चों के बीच संवाद को बढ़ाना, कला और क्राफ़्ट, थिएटर जैसी रचनात्मक गतिविधियों की बात है जो काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। पर साथ ही इसमें अच्छा व्यवहार, आज्ञाकारी और इस तरह की शब्दावली भी शामिल हो गई है। बच्चे नैसर्गिक रूप से सवालिया होते हैं, लेकिन इस छवि पर आज्ञाकारी बालक की छवि फिर से पुरज़ोर उठती और हावी होती हुई दिखती है। अक्षर ज्ञान, साक्षरता और इन जैसी चीज़ों पर भी ज़ोर ज़्यादा है। हमारे अनुभव के आधार पर लगता है कि ये उम्र वो है जहाँ परस्पर संवाद, भागीदारी की समानता, बच्चों में स्वायत्तता का विकास हो सके इनको और जगह देने की ज़रूरत है। ये जो क्युरिअस मिक्स है इसपर कुछ कहें।

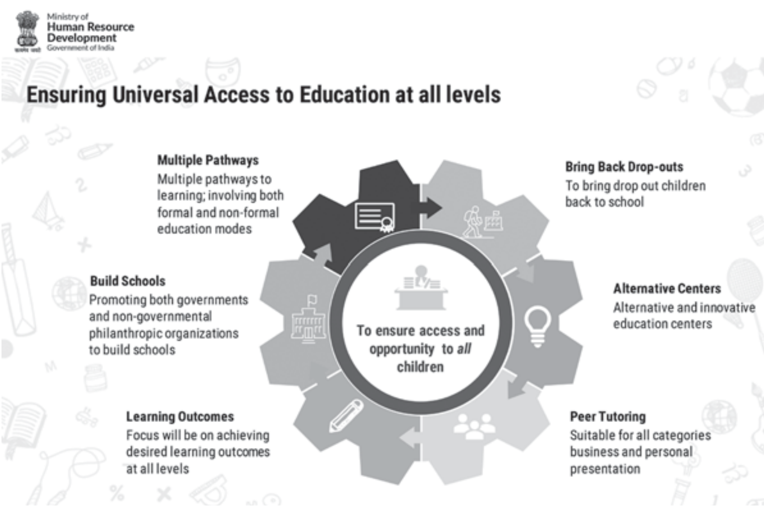

अनुराग : इस शिक्षा नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा पूर्व प्राथमिक शिक्षा या बुनियादी अवस्था है। नए पैडागॉजिकल स्ट्रक्चर 5 + 3 + 3 + 4 की बात बहुत आसान बात है। हम कई बरसों से जानते हैं कि बच्चों के विकास के आधार पर पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्रीय अप्रोच को डिज़ाइन करना चाहिए। इसमें पहले 5 साल पर ज़ोर देना सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसे खेल-आधारित होना चाहिए, इसमें सहजता होनी चाहिए। पढ़ने-पढ़ाने के तरीक़ों को नीचे खींचने की बात नहीं है बल्कि सहजता से पढ़ाने की ज़रूरत है। प्रारूप कहता है कि पहली दूसरी में खेल-खेल में पढ़ाना होना चाहिए और इस उम्र के बच्चों के विकास को देखते हुए संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावात्मक, शारीरिक विकास के लिए यह सब करने की ज़रूरत है। पेचीदा समस्या मेरे ख़्याल से नीति के सामने यह है कि आँगनवाड़ी जो महिला एवं बाल कल्याण विभाग के तहत है उसे तंत्र के साथ जोड़ दिया जाए, लेकिन नीति ने ऐसा नहीं किया है। ये एक राष्ट्रीय नीति

है लेकिन बहुत सारे मुद्दे राज्य के क्षेत्र में हैं और इनपर राज्य ही काम कर सकते हैं। पिछले 50-60 सालों में, ख़ासतौर से स्कूलों के सन्दर्भ में राज्य की ज़िम्मेदारी और अधिकार के तहत ही काम हुआ है। नीति द्वारा इसके लिए चार रास्ते बताए गए हैं और चारों में से कौन-सा रास्ता अख़्तियार किया जाए वो राज्य पर निर्भर है : (1) आप आँगनवाड़ी को पूरी तरह से स्कूल में इन्टीग्रेट कर सकते हैं; (2) प्राथमिक स्कूल के साथ ये कक्षाएँ चल सकती हैं। यह इसपर निर्भर करता है कि आप क्या देखना चाहते हैं और नीति के हिसाब से संस्थागत एकीकरण के लिए बहुत लचीलापन होना चाहिए। ऐसा नहीं कि आँगनवाड़ियों को बन्द करके सब स्कूलों में दे दिया जाए या आँगनवाड़ियों को अलग-थलग रखा जाए या स्कूलों में पूर्व प्राथमिक शुरू किया जाए। ऐसा नहीं है।

स्थानीय सन्दर्भ के हिसाब से जो सही लगता है उस राज्य, ज़िले में वो करना चाहिए। साथ ही पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्रीय पहलुओं से उसका इन्टीग्रेशन होना चाहिए। दूसरा, शिक्षकों को सही व नियमित प्रशिक्षण मिले। आज आँगनवाड़ी में काम करने वाले को आँगनवाड़ी कार्यकर्ता कहा जाता है, उनको भी शिक्षक का ओहदा मिले क्योंकि जब हम कह रहे हैं कि बुनियादी स्तर एक साथ में ही है फिर प्राथमिक स्कूल के शिक्षक और इनमें फ़र्क़ नहीं होना चाहिए। आज से 15-20 सालों में 3 साल की उम्र से 8 साल तक की उम्र के बच्चों के लिए 4 साल के बुनियादी कार्यक्रम वाले ही शिक्षक होंगे। अगले 15 साल देखें तो संस्थागत एकीकरण चाहे कैसा भी हो लेकिन शैक्षणिक एकीकरण होता रहेगा। चाहे शिक्षक प्रशिक्षण हो, शिक्षकों का नौकरी की शर्तों के हिसाब से ओहदा हो, यह सब इन्टीग्रेशन होता रहेगा। आज अलग-अलग राज्यों में आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की स्थिति अलग-अलग है। कहीं उनकी न्यूनतम योग्यता 10वीं पास है, कहीं 12वीं। आज इन सारे आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को घर जाने को कह दें ये उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा, इसलिए उनके साथ काम किया जाए, उनका क्षमतावर्धन हो और जब तंत्र इस दिशा में चलने लगे तब नई नियुक्तियाँ पूरी शिक्षकीय योग्यता के साथ हों। संक्षिप्त में कहूँ तो मुख्य मुद्दा यह है संस्था कोई भी हो; आँगनवाड़ी, प्राथमिक स्कूल, या प्राथमिक के साथ पूर्व प्राथमिक स्कूल, शैक्षणिक दृष्टि ज़रूरी है कि हम उसको एक इन्टीग्रेटेड स्टेज के रूप में देखें जहाँ एक इन्टीग्रेटेड अप्रोच है जिसे मैं मोटेतौर पर प्ले बेस कह रहा हूँ, जिसमें चाक लेकर ब्लैकबोर्ड पर पढ़ाना, लिखाना शुरू न किया जाए बल्कि बच्चों को हँसाया-खिलाया जाए उनको मज़ा आए, उनको सहज बनाया जाए और उसके माध्यम से उनका विकास हो।

संस्थागत मामले को शैक्षणिक मामले से अलग रखना होगा, ऐसा इसलिए क्योंकि शिक्षा तंत्र में बहुत समस्याएँ हैं सारे संस्थागत मसले इतनी जल्दी ठीक नहीं हो सकते, शैक्षणिक मामले में न केवल पाठ्यचर्या निर्माण की बात है बल्कि यह भी बात है कि जो आँगनवाड़ी वर्कर पाठ्यचर्या को ट्रान्ज़ैक्ट करेंगे उनको आज सपोर्ट की ज़रूरत है। आज जो प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक में फ़र्क़ है वो दस-पन्द्रह साल बाद नहीं रहेगा, क्योंकि शुरुआती स्तर के सभी शिक्षकों की योग्यता एक ही होगी। अब यहाँ कैसे जाएँगे, कब जाएँगे, किस तरफ़ जाएँगे, किस स्पीड से जाएँगे, इसके लिए मेरे ख़्याल से सारे राज्यों को अपनी योजना बनानी होगी। इस मामले में केन्द्र सरकार न तो कुछ कर सकती है और न ही करना चाहिए। जैसा मैंने उल्लेख किया, निवेश को 10% से 20% बढ़ाने की बात है उसमें से बहुत सारा निवेश बुनियादी स्तर को सुदृढ़ करने पर किया जाए।

दूसरा, हम सबको मालूम है कि कोई भी दस्तावेज़ एक बहुत जटिल वैचारिक निगोशिएशन का परिणाम होता है। मई 2017 से दिसम्बर 2018 में जब प्रारूप बना रहे थे उस दौरान हमने कम-से-कम 350 से 400 संस्थाओं से सलाह मशविरा किया होगा, कुछ हज़ार लोगों से बातचीत की होगी। जैसा मैंने

बताया, तीन लाख टिप्पणियाँ और सुझाव आए थे। इसकी भाषा भी एक जटिल निगोशिएशन का नतीजा है अतः हमें उसका बेहतर इन्टरप्रिटेशन करना चाहिए। अगर हम भय से इन्टरप्रेट करेंगे तो भयभीत ही होते रहेंगे और अगर हम सृजनात्मकता और साहस से इन्टरप्रेट करेंगे तो उसी तरह से इन्टरप्रिटेशन होता रहेगा।

अब सवाल यह है कि ये सृजनात्मकता और साहस कहाँ से आएगा? आप जानती ही हैं कि इन सवालों के जवाब देना बड़ा मुश्किल है। शायद इसलिए क्योंकि कोई सरल जवाब है ही नहीं। इस चेतावनी के साथ कहूँगा कि साहस तब मिलता है जब हम जानते बूझते हुए अहम का भाव छोड़ देते हैं। यह निस्वार्थ कार्य का भाव हमारी योग्यता से जुड़कर हमें आत्मविश्वास देता और साहसी बनाता है।

सृजनात्मकता तब आ सकती है जब हम अपने चारों तरफ़ फैली बदहाल वास्तविकता के यथार्थ को समझते हुए उसका सामना करते हैं। उससे उसी की शर्तों पर जूझते हैं और अपने मूल्यों के प्रति सच्चे रहते हुए, किसी भी प्रदत्त ज्ञान की बेड़ियों से मुक्त रहते हुए आगे की राह खोजते हैं। ख़ैर।

66 पेज के दस्तावेज़ में भी, और 484 के दस्तावेज़ में भी हर उस जगह पर जहाँ उसकी ज़रूरत है, इसका उल्लेख है कि संवैधानिक मूल्यों का विकास होना चाहिए, समीक्षात्मक सोच का विकास होना चाहिए। सवाल यह है कि कहीं अगर दो शब्द व्यवहारवाद के आ गए हैं तो हम उन्हें मूलभूत आधार क्यों मानें? मैं एक व्यवहारिक और प्रैग्मैटिक बात कह रहा हूँ। यह शिक्षा नीति 1986 के बाद पहली बार बनी है और यह एक बहुत जटिल संवाद, बहुत जटिल निगोशिएशन का आउटकम है। इस आउटकम में हर जगह पर ऐसे सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर अच्छी शिक्षा को ही क्रियान्वित कर सकते हैं। आज्ञाकारी के सम्बन्ध में बात उठी थी मुझे मालूम नहीं कि कहाँ आज्ञाकारी है कम-से-कम प्रारूप में तो कहीं पर नहीं है, 66 पेज के हिन्दी अनुवाद में हो शायद। लेकिन हमें उन शब्दों, विचारों को इनेबल, एन्करेजिंग, एनर्जाइज़िंग मानकर चलना चाहिए जो अच्छी शिक्षा के लिए ज़रूरी हैं, बजाय कि किन्हीं दो-चार शब्दों या पंक्तियों को पकड़कर भयभीत या सीमित हो जाएँ।

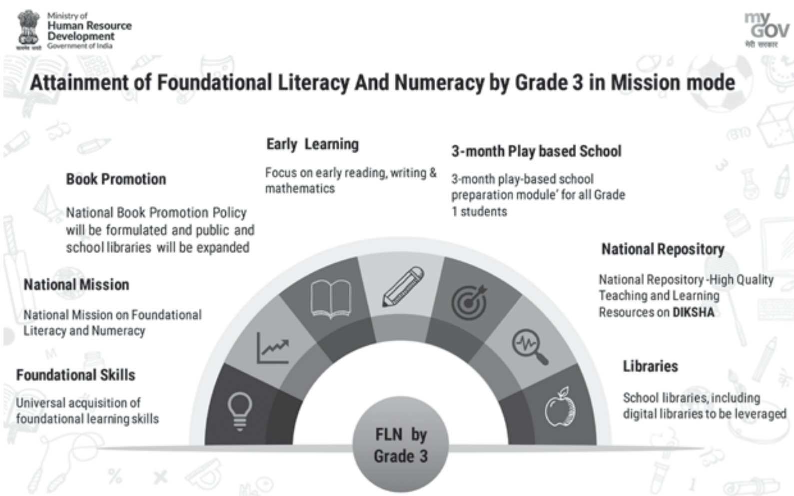

टुलटुल : नीति में बारम्बार रेखांकित किया गया है कि प्राथमिक स्तर की पढ़ाई में बहुभाषिता, मातृभाषा और घर एवं आस-पड़ोस में जो भाषाएँ मौजूद हैं उन भाषाओं को माध्यम के रूप में उपयोग किया जाए लेकिन कई जगहों पर बहुभाषिता की, बच्चे के घर की भाषा को प्राथमिक शिक्षा का आधार बनाने की बात करते हुए नीति व्हेनेवर, पासिबल जैसे लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करती है और इस तरह की शब्दावली की वजह से ये चिन्ता ज़रूर उभरती है कि इसे सम्भव बनाने में जो दृढ़ विश्वास चाहिए, एक शिक्षक को जो आधार चाहिए कि अगर मैं नीति

का सहारा लूँ तो ये मुझे सपोर्ट करेगी, इसकी थोड़ी कमी-सी लगती है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है, शासकीय शालाओं में वहाँ के इलाक़े की भाषा / भाषाएँ बच्चे बोलते हैं हालाँकि कई बार उनका उतना उपयोग नहीं भी होता है। यदि हम पूरे देश की आगे की शिक्षा की बात कर रहे हैं तो ये एक सवालिया निशान या चुनौती की तरह सामने रहता है कि निजी स्कूलों में भी यह कैसे लागू हो पाएगा ताकि पूरी शिक्षा व्यवस्था पर बहुभाषिता के महत्त्व को हम अंजाम दे सकें।

अनुराग : भाषा का मसला शिक्षा के सन्दर्भ में ही नहीं बल्कि हमारे दि5‘जहाँ तक हो सके की बात करूँगा’, उसकी ख़ुद की भाषा से करना चाहिए। यहाँ पर मुद्दा केवल यह है कि हमारे यहाँ तरह-तरह की भाषाएँ हैं, जैसे– मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में कह तो देते हैं कि माध्यम की भाषा हिन्दी है लेकिन बच्चे बहुत-सी भाषाएँ बोलते हैं। और फिर ख़ुद की भाषा छत्तीसगढ़ी का इस्तेमाल नहीं होता है। कक्षा में माध्यम की भाषा का मतलब केवल यह है कि व्यवहारिक रूप से हर भाषा तो निर्देशों का माध्यम नहीं हो सकती है। इसलिए जहाँ तक हो सके बच्चे की भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए और उसे माध्यम की भाषा की मदद से ब्रिज करना चाहिए। आज मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ कई शिक्षकों को दुविधाओं में पाता हूँ कि क्या बच्चे की भाषा का इस्तेमाल करना ठीक है? एक हिचक नज़र आती है; माध्यम की भाषा हिन्दी है, हम मारवाड़ी में कैसे बात करें? हम भीली भी सीख चुके हैं लेकिन भीली इस्तेमाल नहीं करेंगे क्योंकि माध्यम की भाषा हिन्दी है। यह भी कि हर शिक्षक को स्थानीय भाषा इतने अच्छे से नहीं आ सकती।

दूसरा मुद्दा जिसको अहमियत दी गई है वह यह कि छोटे बच्चे बहुत सारी भाषाएँ एक साथ सीख सकते हैं। बहुत सारी भाषाएँ सीखना तरह-तरह से महत्त्वपूर्ण है। कुछ शोध कहते हैं कि यह संज्ञानात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण है। शुरुआती दौर का पढ़ना-लिखना उनकी ख़ुद की भाषा में सीखा जाए लेकिन बच्चे को ऐसा माहौल मिलना चाहिए कि वो बहुत सारी भाषाएँ सीख सके।

तीसरी अहम बात है कि भाषा हमारी अस्मिता, सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता का अभिन्न अंग है। इसके शिक्षा के लिए स्पष्ट मायने हैं अतः भाषा को नकारा नहीं जा सकता और न अलग-थलग किया जा सकता है। इसलिए चाहे तमिल हो, मणिपुरी हो या छतीसगढ़ी, उसका पाठ्यचर्या में स्थान होना चाहिए इसको झुठलाया नहीं जा सकता।

चौथी बात, हालाँकि बहुत लोगों से मेरी इस मामले में राय फरक है पर यह भी झुठलाया नहीं जा सकता कि हमारे समाज में, राष्ट्र में अँग्रेज़ी को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अँग्रेज़ी सामाजिक आकांक्षाओं / तमन्नाओं की भाषा है और कोई अँग्रेज़ी सीखना चाहता है तो उसको उससे वंचित कैसे किया जा सकता है? सम्पन्न लोग तो वंचित नहीं रहते, अँग्रेज़ी सीखने की एक व्यापक सामाजिक चाह है और यह चाह है तो अवसर मिलने चाहिए। ऐसी स्थिति निर्मित नहीं की जाए जिससे सम्पन्न लोग तो सीखते रहें और वंचित लोगों को सीखने का मौक़ा न मिले। इसके व्यवहारिक निहितार्थ यह हैं कि उच्च शिक्षा की तरफ़ जाने पर भाषा की समस्या और बढ़ती है। उच्च शिक्षा में, अगर आप अँग्रेज़ी से वाक़िफ़ नहीं हैं तो तरह-तरह के नुक़सान होते हैं और इसलिए पॉलिसी कहती है कि अँग्रेज़ी सीखने से किसी को रोकना नहीं चाहिए, अँग्रेज़ी सीखने के अवसर सभी को मिलने चाहिए। उच्च शिक्षा में भी भारतीय भाषाओं का उपयोग होना चाहिए और इसके लिए तरह-तरह के व्यापक प्रयास होने चाहिए। ये चार चीज़ें महत्त्वपूर्ण हैं। इन चारों को सोच समझकर आप निर्णय कीजिए कि आपके लिए क्या ठीक है। पॉलिसी ने तो दरअसल इतना ही किया है, इससे ज़्यादा करना भी नहीं चाहिए क्योंकि हम कह रहे हैं कि स्वायत्तता और सशक्तिकरण होना चाहिए। क्या इस सबसे अहम मुद्दे पर उस स्वायत्तता

और सशक्तिकरण को हम खींच लेंगे?

सुदर्शन आयंगार : नई शिक्षा नीति में गाँधीजी द्वारा प्रेरित नई तालीम की झलक दिखाई देती है, आप नई तालीम की भावना को *शिक्षा नीति 2020* के साथ कैसे जोड़ेंगे?

अनुराग : इस पॉलिसी का गाँधीजी के व्यापक विचारों से, उनके सिद्धान्तों से, मूल्यों से पूरा सम्बन्ध है। शिक्षा को आम ज़िन्दगी से जोड़ना, आम ज़िन्दगी से शिक्षा का होना यह सिद्धान्त ज़रूर है, लेकिन इस सिद्धान्त का अन्ततः क्रियान्वयन ज़रूरी नहीं है कि उसी तरह से होगा जिस तरह से हम लोग नई तालीम को देखते हैं।

टुलटुल : कई इलाक़ों में, जैसे– बड़वानी, मंडला, धार, बैतूल, जहाँ हम काम कर रहे हैं वहाँ पर काम के कारण पलायन कर जाने वाले परिवार बहुत बड़ी संख्या में हैं। इन बच्चों की शिक्षा अविरत चले इसके बारे में कोई भी व्यवस्था अभी उस तरह से लागू नहीं हो पाती है। ये बच्चे एक जगह पर दाख़िला लेते हैं और फिर वो अपने परिवारों से साथ भट्टों में या काम की जगह पर चले जाते हैं।

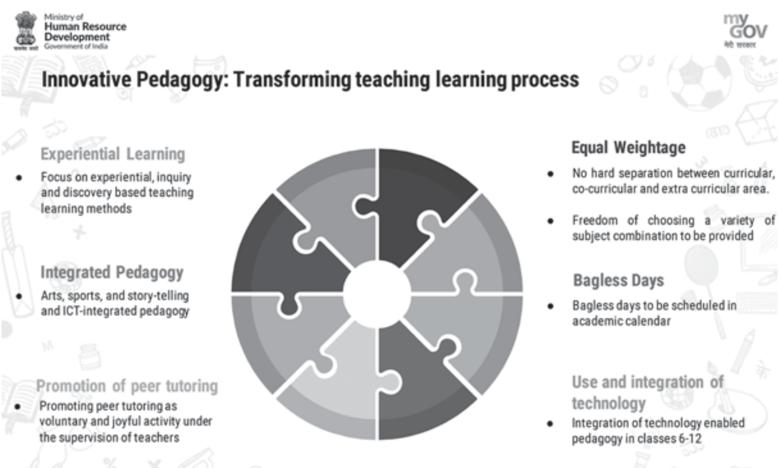

क्या इसके बारे में नीति चर्चाओं में कुछ बातचीत हुई है? शिक्षा का अधिकार क़ानून आने के बावजूद इन बच्चों को अविरत शिक्षा नहीं मिल पा रही है, इसके बारे में आप क्या सोचते हैं?

अनुराग : इसके बारे में नीति निर्माण के दौरान बहुत चर्चा हुई कि क्या इसका कोई ख़ास हल हो सकता है? मेरे ख़्याल से आम सहमति थी कि स्कूलों को इस वस्तुस्थिति से डील करने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने होंगे और उसका मतलब यह भी हो सकता है कि जिन जगहों पर ऐसे छात्र आते हैं क्या वहाँ पर पर्याप्त शिक्षक नियुक्त किए जा सकते हैं। दूसरी बात यह कि स्कूल संस्कृति में इन्क्लूज़न को अहम स्थान दिया जाए। जो बच्चे इस तरह की स्थिति का सामना कर रहे हैं उनको स्कूलों में दाख़िला मिले और उनको पूरा सपोर्ट मिले और स्कूल सपोर्ट दे पाएँ इसलिए स्कूल को पर्याप्त संसाधन मिलें। मेरी समझ में यह बहुत ही गहन समस्या है और इस समस्या का कोई बहुत सीधा समाधान है भी नहीं। शिक्षा समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं और पहलुओं में से एक है लेकिन शिक्षा अपने-आप में समाज के सारे पहलुओं से या सारी समस्याओं से जूझ नहीं सकती। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया होते हुए भी यह अपने-आप में पूरी नहीं है लेकिन साथ ही शिक्षा को समाज की दूसरी प्रक्रियाओं से अलग देखना वाज़िब भी नहीं है और वास्तविक भी नहीं है। सरल शब्दों में, इसका निहितार्थ यह है कि सब चीज़ों का समाधान शिक्षा के अन्दर नहीं है या शिक्षा तंत्र के अन्दर ही नहीं है, बहुत सारी चीज़ों का पूरक समाधान शिक्षा तंत्र के बाहर और शिक्षा तंत्र से जुड़ी हुई चीज़ों से है जैसे प्रवास की बात हो गई। एक-दो उदाहरण और देता हूँ। हम जानते हैं कि बच्चों

के लिए पोषण की भूमिका काफ़ी अहम है। नीति कहती है कि बच्चों को पोषक ब्रेकफ़ास्ट देना चाहिए वो यह भी कहते हैं कि मध्याह्न भोजन का व्यय मुद्रास्फीति (एक अर्थव्यवस्था में चीज़ों, सेवाओं की बदलती, बढ़ती दर) की दर को देखते हुए करना चाहिए वरना उसपर व्यय पर्याप्त दृष्टि से बढ़ता ही नहीं है। पर फिर हमें उस पोषण के सन्दर्भ में भी सोचना है जो पैदाइश से 3 साल तक के बच्चे यानी जब तक स्कूल नहीं आए उसके लिए है। उसके लिए आईसीडीएस सिस्टम है यानी ये पूरी तरह से एक शैक्षणिक मुद्दा नहीं है। ये शिक्षा तंत्र का बाहर के सिस्टम के सन्दर्भ से है। एक और बात नियामक संस्कृति की है। वर्तमान में शिक्षा की नियामक संस्कृति मतलब एनसीटीई की संस्कृति से है। ये नियामक संस्कृति सशक्त करने वाली होनी चाहिए। संस्थानों के निरीक्षण के बजाय उनकी स्वायत्तता, उनपर विश्वास होना साथ ही नियामकता की ये संस्कृति जो शिक्षा में है वो बाक़ी नियामकता की संस्कृति से अलग-थलग नहीं है। शिक्षा की नियामक संस्कृति से वो भी प्रभावित होगा लेकिन बाक़ी व्यापक संस्कृति से भी ये प्रभावित होगा। इसपर पॉलिसी कुछ बात करती है लेकिन मुझे लगता है कि केवल शिक्षा नीति से इसका कोई हल सम्भव नहीं है।

सानिया : इस नीति में प्राचीन भाषाओं ख़ासकर संस्कृत पर काफ़ी ज़ोर दिया गया है।

अनुराग : इस दस्तावेज़ को आप किस तरह से इन्टरप्रेट करेंगी, ये आप पर निर्भर करता है। जैसे संस्कृत की बात हुई है लेकिन संस्कृत को ज़रूरी ही करना है ये कहाँ है? फिर कह रहा हूँ कि ये सात साल की निगोशिएशन की प्रक्रिया है जिसमें इस समाज के हर तरह के लोग सम्मिलित थे। अब भाषा के लिए सुझावित नीति में सर्वोत्कृष्ट क्या होता है आपके हिसाब से उसको ढूँढ़ने की बजाय, जिससे हम सहमत हैं, जो अच्छी चीज़ है उसको लेकर आगे बढ़ना व्यवहारिक रूप से बेहतर होगा, ऐसा मेरा मानना है। नीति जो मंच देती है उस मंच को लेकर आगे बढ़िए और जो आपको पीछे खींच रहा है उस विचार को छोड़ दीजिए।

टुलटुल : समानता के ज़रिए गुणवत्ता की बात है, पर अब हमें समानता में ही गुणवत्ता है इस दिशा में भी आगे जाना है क्योंकि अगर अवसरों की समानता, एक दूसरे के साथ काम करके कुछ हासिल करने की समानता शिक्षा प्रक्रिया में न हो तो वो असल में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है ही नहीं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की परिभाषा में ही ये समानता निहित हो। दूसरी बात शिक्षकों के पेशेवर विकास की है, उनको पाठ्यचर्या के स्तर पर स्वायत्तता देने की बात है और ये दोनों ही काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं और इसमें और आगे हमें चर्चाएँ और काम जारी रखना होगा। बच्चों के सीखने के स्तरों के आकलन की बात होती है इस प्रक्रिया में भी शिक्षकों की स्वायत्तता शामिल हो, पाठ्यचर्या के साथ-साथ आकलन का एक बहुत गहरा जुड़ाव है और यही वह बल और दिशा प्रदान करता है कि कैरिकुलम के तहत किस तरह से नए प्रयास किए जाएँ। स्वायत्तता शिक्षकों को मिल पाए और इस स्वायत्तता को बहुत अच्छे से काम में तब्दील करने की अभिप्रेरणा शिक्षकों को मिल पाए, उसके लिए हम मिलकर काम करते रहेंगे।

आप राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दस्तावेज https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf पर पढ़ सकते हैं।

सभी चित्र मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के प्रेज़ेंटेशन से साभार।

टुलटुल बिस्वास एकलव्य फ़ाउण्डेशन के शिक्षा कार्यक्रम में कोई तीन दशक से जुड़ी हुई हैं और मुख्यतः शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रम का समन्वयन करती हैं। वे एकलव्य की बहुचर्चित बाल विज्ञान पत्रिका *चकमक* के सम्पादन से जुड़ी रही हैं। रसायनशास्त्र और समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर टुलटुल की बाल साहित्य में विशेष रुचि और दख़ल है।
सम्पर्क : tultulbiswas@yahoo.com